International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(5): 55-59

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(5): 55-59
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-07-2016
Accepted: 12-08-2016

डॉ. पुष्पा
व्याख्याता (संस्कृत) गौरी देवी राज. महिला महा. अलवर (राज.)

Correspondence
डॉ. पुष्पा
व्याख्याता (संस्कृत) गौरी देवी राज. महिला महा. अलवर (राज.)

भारतीय दर्शन में आनन्द बोध

डॉ. पुष्पा

प्रस्तावना

भारत में कलाओं की साधना व विकास का लक्ष्य आत्मोत्कर्ष तथा परमानन्द की प्राप्ति रहा है। इस आत्मिक आनंद को 'रस' कहा गया है। 'रस' को ही 'ब्रह्म' माना गया है–

> रसो वै सः। रसं ह्येवायलब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'
> (तैत्तिरीयोपनिषद् द्वितीय अध्याय बह्मवल्ली)

'रस' अथवा 'आनन्द' प्राप्ति ही कलाओं का लक्ष्य रहा है। 'आनन्द' पद का अर्थ–प्रसन्न होना, मौज आनंद मनाना, खुशी मनाना, सुखी होना।

आनन्दः (पु.)–की उत्पत्ति आ उपसर्ग +नन्द धातु +घञ् प्रत्यय से मानी जाती है, जिसका अभिप्राय है प्रसन्नता, हर्ष, खुशी।

सुख– आनन्द ब्रह्मणों विद्वान्न विभेति कदाचन।

ईश्वर, परमात्मा। (संस्कृत–हिन्दी शब्दकोष, वामन शिवराम आप्टे, पृ0–175) संसार में प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'आनन्द की परिभाषा अलग–अलग है। आनन्द अर्थात् रस, सुख, प्रसन्नता इत्यादि। शिशु के लिए अपने अंगों से खेलना आनन्द है, चित्रकार के लिए चित्र बनाना आनन्द है, स्त्री के लिए परिवार के सभी सदस्यों को सन्तुष्ट करना आनन्द है। विद्यार्थी के लिए अच्छे अंक प्राप्ति आनन्द है, लेखक के लिए लेखनकार्य करना आनन्द है, मोक्षगामी साधक के लिए ब्रह्मानंद परम आनंद है। हम सभी संसारिकों के लिए सांसारिक उपलब्धियाँ प्राप्त करना आनन्द है। आनन्द को परिभाषा में बाँधना यद्यपि एक कठिन कार्य है परन्तु एक बात सभी पर लागू होती है जहाँ पहुँचकर कहीं और जाने की अभिलाषा न हो जहाँ इच्छाओं की सीमाएँ खत्म हो जाये वही आनन्द है और आनन्द सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

जिस प्रकार काव्य में रसानुभूति ही आनन्द है उसी तरह दर्शन की दृष्टि में परम तत्व का ज्ञान प्राप्त करना अर्थात् कैवल्य अथवा मोक्ष अथवा निर्वाण अथवा अपवर्ग की स्थिति। तैत्तिरीय उपनिषद् (2/7) में कहा है– 'एष ह्येवानन्दयाति' यह आनन्द करता है निश्चित रूप से यह जीवात्माओं को आनन्द से युक्त कर देता है जो प्रचुर आनन्द वाला होगा वही तो आनन्दित करेगा जैसे जो दूसरों को विद्यादान द्वारा विद्यावाला बना देता है वह अवश्य प्रचुर विद्यावाला होता है। उसी प्रकार जीवात्माओं को आनन्द देने वाला ब्रह्म अवश्य प्रचुर आनन्द वाला होता है। तैत्तिरीय उपनिषद (2/9)– आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान, न विभेति कुतश्चन' ब्रह्मानन्द को उपलब्ध ज्ञानी कहीं से भयभीत नहीं होता है यहाँ आनन्दमय की प्राप्ति को ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कहा है। अतः स्पष्ट होता है कि ब्रह्म आनन्द का हेतु है इसलिए जीवात्मा साक्षात्कार द्वारा वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करता है। ब्रह्म आनन्द रूप होने से असीम आनन्द का भण्डार है। जिस प्रकार प्याज के छिलकों में अन्दर गिरी छिपी रहती है उसी प्रकार बाहर का स्थूल शरीर उसके अन्दर सूक्ष्म शरीर यह ब्रह्मरन्ध्रप्रदेश में आत्मा को आवेष्टित रखता है उसके अन्दर ब्रह्म प्रतिष्ठित रहता है। इसे ही उपनिषदों में 'गुहाहितं' कहा है।

'आनन्दमयोऽभ्यासात' (ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्याय, प्रथम पाद–12) का अभिप्राय है जिस ब्रह्म को बार–बार आनन्द से युक्त बताया है वह ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। तैत्तिरीय उपनिषद के ब्रह्मवल्ली नामक द्वितीय अध्याय में पाँच कोषों का वर्णन है कोश का अभिप्राय आवरण करने वाला, ढ़कने वाला है। 'ब्रह्मविदाप्नोति परम' ब्रह्म को जानने वाला परम अर्थात् उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त कर लेता है यह उत्कृष्ट अवस्था की प्राप्ति जीवात्मा को होती है यही ब्रह्म को प्राप्त होना अथवा मोक्ष कहलाता है। जीवात्मा का लक्ष्यभूत आनन्दमय आत्मा ब्रह्म है उस अतिशय आनन्द की प्राप्ति के लिए जीवात्मा उसे जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

योगसाधना का लक्ष्य स्पष्टरूपेण ब्रह्मप्राप्ति है। कठोपनिषद के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप हमारे दृष्टिक्षेत्र की परिधि से बाहर है दृष्टि द्वारा ब्रह्म का सात्कार प्राप्त करने में कोई मनुष्य समर्थ नहीं हो सका और न किसी के लिए हृदय, कल्पना अथवा मन के द्वारा उस परमतत्व का साक्षात्कार सम्भव है। जो इस सनातन शिव सत्य को जानते हैं वह अमर हो जाते हैं। यथा–

न संदृषे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कष्चनैनम्। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो च एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।

(कठो. II.6.9)

साक्षात्कार संभव न भी हो परन्तु अनुभूति संभव है। कठोपनिषद के अनुसार ब्रह्म साक्षात्कार का स्वरूप वही है जो एक वस्तु अथवा घटना के प्रत्यक्ष दर्शन का है लेकिन सूक्ष्मदर्शी ऋषि ही अपनी सूक्ष्म बुद्धि की सहायता से उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। यथा– "एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः"।

(कठो.I.3.12)

जब ज्ञान प्रसाद से मनुष्य का समस्त नैतिक व्यक्तित्व स्वच्छ और शुद्ध हो जाता है तभी वह चिन्तन द्वारा अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है क्योंकि वह न दृष्टि से, न वाणी से, न अन्य किसी इन्द्रिय से, न तप से, न कर्म से प्राप्त हो सकता है।

अपने अन्तस में ही ब्रह्म प्राप्ति की सम्भावना ही आत्म शुद्धि और आत्म चिन्तन की दीर्घ प्रक्रिया द्वारा साधक के ब्रह्मान्वेषण की प्रेरक है। मुण्डकोपनिषद् में वर्णित है कि– आत्मा की रूचि जिसके अनुकूल होती है उसके अतिरिक्त अन्य कोई आत्मानुभूति की प्राप्ति नहीं कर सकता।

यमेवेष वृणुते तेनैव लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते

(मु0 III.3.12)

मुण्डकोपनिषद में आत्मानुभूति से पूर्व तथा आत्मानुभूति के पश्चात् की स्थिति में अत्यन्त भेद है। चार्वाक दर्शन के अनुसार आनन्द का अभिप्राय भोगों को भोगना है। यथा–

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा धृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः?

(सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक दर्शन)

अर्थात् जब तक जीये सुखपूर्वक जीये। ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए क्योंकि भस्म रूप में परिणत शरीर का पुनरागमन किसी प्रकार संभव नहीं है। चार्वाक दर्शन इन्द्रियों के सुखों का उपभोग ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य स्वीकार करता है। चार्वाक की प्रमाण मीमांसा, प्रत्यक्षवादी, तत्वमीमांसा, भातिकवादी एवं आचार मीमांसा भोगवादी है क्योंकि इनका मानना है कि 'काम एवैकः पुरूषार्थः', केवलमात्र काम ही एकमात्र पुरूषार्थ है 'खाओ, पीओ और मौज करो' ही जीवन का लक्ष्य है। शरीर को भोगो से तृप्त कराओ, भोगों को भोगने में प्राप्त होने वाला सुख ही परम पुरूषार्थ है। चार्वाक दर्शन का मूल ही 'आनन्द' में रमण करना सांसारिक भोगों को भोगना है वही परम आनन्द है। भारतीय संस्कृति चतुर्थ पुरूषार्थों पर आधारित है धर्म, कर्म, काम और मोक्ष परन्तु चार्वाक दर्शन केवलमात्र 'काम' को ही स्वीकार करते हैं।

आत्मा सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र का प्रसिद्ध तथा मूलतत्व है। आत्मा अद्वैतवेदान्त का अति महत्वपूर्ण वर्ण्य विषय है क्योंकि आत्मज्ञान द्वारा ही परब्रह्म परमात्मा को जाना जा सकता है। आत्मा की सिद्धि के लिए वेदान्ती किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझते हैं क्योंकि आत्मा तो स्वयः सिद्ध है वेदान्ती मानते हैं। आत्मा को सत् चित् आनन्द स्वरूप है। वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है चैतन्य उसका वास्तविक धर्म है। इस दृश्यमान जगत में जो कुछ भी प्रकाश, चैतन्य और आनन्द दिखाई देता है। यह आत्मा तत्व स्वभाविक रूप में समस्त विषयों से निर्लिप्त आनन्दमय है। आनन्दमय शब्द का निर्माण पाणिनी के सूत्रानुसार

तत्प्रकृत वचने..... प्रचुरता के अर्थ में मयट प्रत्यय लगाने से हुआ है 'आनन्द की प्रचुरता' गुणहीन होने से यह आनन्द की प्रचुरता एकमात्र ब्रह्म में ही प्राप्त होती है। श्रुतियों में स्थान–स्थान पर ऐसे वर्णन मिलते हैं यथा– आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म, एतमानन्दं अयमात्मानमुपसंक्रामिति इत्यादि। ब्रह्म को सदानन्द योगीन्द्र ने वेदान्तसार में इस रूप में वर्णित किया है–

अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टासिद्धये।।

(सदानन्दयोगीन्द्र वेदान्त सार–01)

अर्थात् ब्रह्म सत् चित आनन्द है सत् का अभिप्राय है त्रिकालाबाधित पदार्थ जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य सभी कालों में विराजमान है। ब्रह्म प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक काल में विकारहीन एवं नित्य है वह नित्य प्रबुद्ध तथा पूर्ण होने से आनन्दवर्धक है। ब्रह्म कर्मों से लिप्त न होने से उनमें सुख, दुःख, मोहादि गुण भी व्याप्त नहीं होते वह सदा आनन्दयुक्त है। वह प्रौढ़साहित्यिक की भाँति सदा ही आनन्दानुभूति करता है क्योंकि उसमें अविद्या का अभाव है। जीव का सीधा सम्बन्ध ईश्वर के साथ है। ईश्वर के ज्ञान से ही वह ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है।

वेदान्त में स्थूल शरीर पाँच कोशो वाला– आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय वाला होता है।

जिस प्रकार कण्ठ में पड़ा हुआ हार जिसे भ्रमवश त्वंडसि अन्यत्र खोजता है तथा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा हार का ज्ञान करा दिये जाने पर वह उसे अपने कण्ठ में ही प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार जीवात्मा अज्ञानतावश अपने स्वरूप को विस्मृत कर अन्यत्र आनन्द की खोज करता है किन्तु गुरू के द्वारा उसका अज्ञानावरण हटाकर उसे 'तत त्वं तत्वमसि' का उपदेश प्राप्त होने पर उसे अपने यथार्थ स्वरूप 'आन्दमय ब्रह्म' का साक्षात्कार हो जाता है यह आनंद ही मोक्ष है। मोक्ष निशेधात्मक नहीं है यदि मोक्ष का वर्णन कहीं निशेधात्मक रूप से किया गया है तो उद्देश्य यही है कि ब्रह्म के समान ही मोक्ष में भौतिकता का परिहार किया जाए। चित् सुखाचार्य के शब्दों में मोक्ष अनवच्छिन्नानन्दप्राप्ति हैं। यह अनवच्छिन्न आनन्द अज्ञान के विनाश होने पर ही व्यक्त होता है। अज्ञान के विनश्ट होते ही आत्मा और ब्रह्म का पार्थक्य भी समाप्त हो जाता है। मुक्ति तो आत्मा का ब्रह्म के साथ अपृथक तादात्म्यभाव है। ब्रह्म आनन्द है, यही सुखरूप है, वह सुखरूप न होता तो विचारशील लोगों की प्रवृत्ति भी उस ओर न होती। ब्रह्म की आनन्दरूपता को सिद्ध करने वाली श्रुतियों में अनेक उक्तियाँ है– बृहदारण्यक कहता है–'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है– 'आनन्दो ब्रह्मेति', मुण्डकोपनिषद कहता है– 'आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति'।

आत्मानुभूति के बाद अलौकिक शक्ति का संचार होता है जो पूर्व में नहीं थी। जैसे ही सर्वशक्तिमान ब्रह्म का साक्षात्कार होता है असीम आनन्द की अनुभूति होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में उस असीम आनन्द का प्रमाणिक वर्णन मिलता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आधिभौतिक श्रेय और आध्यात्मिक श्रेय में जाति भेद नहीं बताया है। आधिभौतिक श्रेय भी उसके लिए आनन्द का ही एक पथ है और आध्यात्मिक श्रेय उसका परम पर्यवसान। "एक कुलीन, सुसंस्कृत, सस्फूर्ति, दृढ़, बलिष्ठ, स्थिरबुद्धि, बलिष्ठ तथा विश्ववैभव का स्वामी एक नवयुवक है। इससे सौ गुना आनन्द से परिपूर्ण मनुष्य गन्धर्व का आनन्द, इससे सौ गुना आनन्द देवगन्धक का, इससे सौ गुना आनन्द पितृ आनन्द, इससे सौ गुना जन्मसिद्धि देवताओं का, इससे सौ गुना आनन्द कर्मसिद्ध देवताओं का, इससे सौ गुना आनन्द सर्वश्रेष्ठ देवताओं का आनन्द है, इससे सौ गुना

इन्द्र का आनन्द, इससे सौ गुना बृहस्पति का, इससे सौ गुना आनन्द प्रजापति का, इससे सौ गुना आनन्द ब्रह्म का आनन्द है और प्रत्येक बार हमे बताया गया है कि वासना मुक्त ऋषि को ये आनन्द पृथक–पृथक तथा उत्तरोत्तर विकसित रूप में प्राप्त होते हैं।" यथा–

"सैषाऽऽनंदस्य मीमांसा भवति..... श्रेत्रियास्य चाकामहतस्य।"

(तै0 II.8)

अतः अभिप्राय यह हुआ कि पृथ्वी के समस्त आनन्दों के सम्मिलित आनन्द की अपेक्षा असंख्य गुणा आनन्द ब्रह्मानन्द में है। इसलिए इसे प्राप्त करने में जिसने सफलता प्राप्त कर ली उसका जीवन धन्य है। आध्यात्मिक आनन्द अलग प्रकार का है आधिभौतिक आनंद अलग प्रकार का। ब्रह्मज्ञानी ऋषि का आनंद किसी पुरूष के भौतिक सुख के परिणाम से नहीं मापा जा सकता, चाहे मनुष्य का भौतिक जीवन कितना ही उच्चतम परिस्थिति अथवा कितना ही दिव्य क्यों न हो। जिस प्रकार पति अपनी पत्नि से सुख की प्राप्ति करता है उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के परिरम्भण के बाद समस्त ब्राह्यभ्यान्तर वस्तुओं को भूल जाती है उस ब्रह्म को प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्त करने योग्य शेष नहीं रहता। तैत्तिरीयोपनिषद में ब्रह्मानन्द की अनुभूति का पहला प्रभाव बताया है कि योगी सदा के लिए भयमुक्त हो जाता है। 'आनन्द' का भाव समस्त वृत्तियों का नाश कर देता है। योगी पर आत्मानुभूति का तात्कालिक प्रभाव, शारीरिक उद्वेगों का पूर्ण उपशम, समस्त संशयों का समाधान, अनन्त शक्ति की प्राप्ति, अपरिमित आनन्द की उपलब्धि, सम्पूर्ण भय का नाश तथा प्रत्येक वांछित फल की प्राप्ति होती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में प्रथम बार आत्मा के कोशों तथा आनन्दमय कोश की मीमांसा वर्णित है। भारतीय दर्शनों में मुख्यतः जीवन का परम ध्येय मोक्ष अथवा अपवर्ग अथवा निर्वाण अथवा कैवल्य की प्राप्ति है चार्वाक दर्शन एक अपवाद स्वरूप है। आत्मा का परमतत्व में लीन होना, एकाकार होना ही मोक्ष है यही स्थिति अलौकिक आनन्द की भी है। इसी तथ्य को पतंजलिकृत योगसूत्र में भी लक्षित किया है यथा–

'अखण्डवस्त्वनवलम्बनेनापि चितवृत्तेः सविकल्पकानन्दास्वादनं रसास्वादः समाध्यारम्भसमये सविकल्पकानन्दास्वादनं वा।'

अर्थात् अखण्ड वस्तु तक न जाकर भी मनोवृत्ति का सविकल्पक समाधि आनन्द में आस्वादन को रसास्वाद या निर्विकल्पक समाधि का आरंभ होते ही सविकल्पक आनन्द से ही सन्तुष्ट हो जाना रसास्वाद है।

'रसो. वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्।

यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येणानन्दयति'। वह रस है रस को पाकर ही यह आत्मा (जीवात्मा) आनन्द से युक्त हो जाता है। ब्रह्म को रस बताकर उसे आनन्दरस कहा गया है उसी आनन्द को प्राप्त कर यह जीवात्मा आनन्द से भर जाता है। आत्मज्ञान हो जाने पर उस आनन्द को अनुभव करता है 'आनन्दं ब्रह्मणे विद्वान न विभेति कुतष्चन' (तै0 2/9) जो ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला है, वह कहीं किसी से नहीं ड़रता। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति सांसारिक भय से पार उतार देती है।

(तै0 उप0 3/6) 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' ब्रह्म आनन्द है।

'आनन्दाद्वेयव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' उस आनन्दस्वरूप ब्रह्म के अस्तित्व से ही सम्पूर्ण जगत प्रादुर्भूत होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (3/9/28) में 'विज्ञानमानन्दं अर्थात् ब्रह्म चेतन है, आनन्द है। ऋग्वेद (4/31/2) यजुर्वेद (36/5) अथर्ववेद (2/1/5) मुण्डकोपनिषद (3/1/7) ब्रहदारण्यक (4/3/32), छान्दोज्ञय (7/23/1) इत्यादि अनेक प्रसंगों में ब्रह्म के आनन्दस्वरूप का प्रतिपादन हूआ है। आनन्दमयाधिकरण में केवल ब्रह्म के आनन्दस्वरूप होने का प्रतिपादन किया गया है। आनंद केवल चेतन का स्वरूप होना संभव है। ब्रह्म के अतिरिक्त चेतन तत्व जीवात्मा हैं। जीवात्मा आनन्द की अनुभूति के लिए साम शम, दम, तितिक्षा, त्याग, तपस्या, समाधि आदि द्वारा प्रयत्न करता है और पूर्ण आत्मज्ञान की अवस्था को प्राप्त कर वह उस आनन्द का अनुभव कर लेता है। उपरोक्त साधनों के माध्यम से जीवात्मा आनन्दानुभूति की अवस्था को प्राप्त कर सकता है परन्तु वह स्वभावतः आनन्दरूप नहीं है यदि वह आनन्दरूप होता तो उसे अन्य माध्यमों की आवश्यकता क्यों होती? वह आनन्दहीन भी कभी नहीं होता। उपनिषदों में ब्रह्म को ही आनन्दमय बताया है यह उसकी विशेषता है किसी और की नहीं अर्थात् केवलमात्र ब्रह्म ही आनन्दमय है। आनन्द से परिपूर्ण है।

मुण्डकोपनिषद् (2/2/7) में वर्णित है कि–

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपष्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति।।

अर्थात् जो सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी है, जिसकी महिमा का प्रकाश संसार में प्रकट हो रहा है वह आत्मा (ब्रह्म) दिव्य ब्रह्मपुर (ब्रह्मगुहा) नामक प्रोश में प्रतिष्ठित है। जो मनोमय प्राण और शरीर का नेता है, अन्नमय शरीर के प्रोष मे बुद्धि को सन्निहित कर स्वयं प्रतिष्ठित है, धीर जिज्ञासु जन उस आत्मा के साक्षात् ज्ञान द्वारा प्रकाशमय अमृत आनन्दरूप ब्रह्म का दर्शन करते हैं। मनोमय, प्राणमय, अन्नमय, विज्ञानमय, तथा आनन्दमय कोश अवस्थाओं द्वारा फलरूप में मोक्ष को प्राप्त करते हैं। आत्म ज्ञान हो जाने पर आत्मा को आनन्दानुभूति होना ब्रह्मज्ञान है इसी गुहा में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसी तात्पर्य को तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्मवल्ली नामक द्वितीय अध्याय की प्रारम्भिक पंक्तियों में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है–

'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन। सोऽष्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपष्चितेति।'

शतकत्रय के कर्त्ता भर्तृहरि ने भी वैराग्यशतक में वैराग्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ सुख बताया है "वैराग्यमस्ति किमितः परमर्थनीयम्" (श्लोक 61)

अभिप्राय है कि ईश्वरभक्ति में लीन रहने से जन्म–मरण के भय का नाश होता है, सम्बन्धियों के प्रति आसक्ति की भावना शून्य रूप हो जाती है और मन विकार रहित हो जाता है इसके अतिरिक्त अनिर्वचयनीय वैराग्य कौन सा होगा? अतः ब्रह्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ है यथा–

"यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः"

(वैराग्य शतक, श्लोक–63)

संसारिक भोगों की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ है और ब्रह्मज्ञान के समक्ष तीनों लोकों का राज्यसुख भी गौण है। सच्चा सुख आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति में है। आत्मा की आवश्यकता है ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्मा को परम तत्व (परमात्मा) में लीन करना इसी में सच्चा सुख है। अतः वैराग्यशतक में भर्तृहरि जी ने ब्रह्मज्ञान से प्राप्त सुख को ही वास्तविक सुख बताया है।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र साधनपाद के सूत्र संख्या 07 में सुख प्राप्त होने पर उसके पश्चात 'राग' नामक क्लेश की उत्पत्ति बताई है यथा–

"सुखानुशयी रागः"

अर्थात् सुख के अनुभव के पश्चात् होने वाला क्लेश राग कहलाता है। महर्षि पंच क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेष) के वर्णन में राग अथवा आसक्ति के विषय में विस्तारूपेण व्याख्या करते हुए बताते हैं कि संसारी व्यक्तियों को अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति

होने पर सुखानुभूति होती है उन्हें उस वस्तु के प्रति आसक्ति हो जाती है यह आसक्ति या लोलुपता ही 'राग' नाम क्लेश है। इसके अतिरिक्त अष्टाग्योग वर्णन में द्वितीय नियम 'संतोष' के विषय में बताया है कि–

सन्तोषादनुतमसुखलाभः

(पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र 42)

संतोष द्वारा सर्वोत्कृष्ट आनन्द की प्राप्ति होती है। पतंजलि कहते हैं जब 'संतोष' नामक द्वितीय नियम की अनुपालना से योगी में उसकी पूर्ण स्थिति हो जाती है तब उसे अनुत्तमसुखलाभ होता है अर्थात् सर्वोत्कृष्ट आनंद की प्राप्ति। क्योंकि तृष्णाएँ अनन्त हैं एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी इस क्रम से उठती रहती हैं अतः संतोष की प्राप्ति आवश्यक है क्योंकि संतोष प्राप्त होने पर उपलब्ध संसाधनों में ही अपार आनंद की प्राप्ति की सम्भावनाएँ बन जाती है। संतोष के प्रकर्षरूप में होने से योगी में इस प्रकार का आंतरिक प्रादुर्भाव होता है जिसके सौवें भाग के बराबर भी विषयसुख नहीं होता है। इसी प्रकार का भाव निम्न श्लोक में वर्णित है यथा–

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडषी कलाम्।।
(महाभारत शान्तिपर्व 174/46, वायुपुराण 93/101)

अर्थात् लोक में जो काम से प्राप्त सुख है और जो दिव्य स्वर्गीय सुख है ये दोनों तृष्णा के विनाश से उत्पन्न सुख के 16वें अंश के योग्य भी नहीं है। अतः तृष्णाओं का विनाश करना अति महती आवश्यकता है। संतोष को अश्वघोश कृत बुद्धचरित में भी आवश्यक बताया है यथा–

सुखमिच्छसि पूर्णं चेत्संतोषमवलम्बताम्।
भूभावपि सुखं शेते तुष्टो नान्यस्त्रिविष्टपे।।
(बुद्धचरितम्, 26वाँ सर्ग, श्लोक 59)

अभिप्राय है यदि सुख चाहते हो तो संतोष का अवलम्ब लो। सन्तोषी पृथ्वी पर भी सुखपूर्वक सोता है जबकि असन्तोषी स्वर्ग में भी सुख नहीं पाता है। सभी प्रकार के दुखों का मूल है कामना अथवा आसक्ति यदि आसक्ति का नाश हो जायेगा तो जन्म–मरण चक्र भी रूक जायेगा, कर्मों का बंधन, कर्मफल, कर्म संस्कार सभी का नाश होने पर उस परमानन्द स्वरूप परमतत्व का साक्षात्कार होगा यही भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य है उस परम तत्व का ज्ञान प्राप्त करना। इसके लिए 'राग रहित' होना होगा जिसे श्रीमद्भगवद्गीता में 'समत्वं योग उच्चते' कहा है अर्थात् विपरीत द्वन्दो में भी एक जैसा भाव रखना। परिस्थितियों से विचलित नहीं होना ही, एकत्व की स्थापना ही 'योग' कहलाता है।

"सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः।"

(चाणक्य सूत्र 1–1,2)

अतः उपरोक्त पंक्तिनुसार समस्त प्राणियों की सुख समृद्धि का मूल धर्म है तथा धर्म का मूल अर्थ की बताया गया है। मानसिक सुख अथवा मानसिक आनन्द प्राणियों के पुण्य कर्मों का प्रतिफल होता है यथा–

इन्द्रियाणां च पंचानां मनसो हृदयस्य च।
विषये वर्तमानानां या प्रीतिरूपजायते
स काम इति में बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम्।

(महाभारत, वनपर्व)

दर्शन जगत का अंतिम लक्ष्य है–'क्लेशों से निवृत्ति' इस निवृत्ति का दार्शनिक सम्बोधन है 'मोक्ष'। मोक्ष शब्द संस्कृत की मुच् धातु से त्यागना अर्थ में निर्मित होता है। मोक्ष का सामान्य अर्थ मृत्यु से लिया जाता है। मृत्यु द्वारा इस भौतिक शरीर का त्याग हो जाता है। शरीर के विनाश के साथ ही सुख दुःखादि की अनुभूति भी नष्ट हो जाती है साधारण प्राणी इस अवस्था को मोक्ष रूप में स्वीकार करते हैं किन्तु दर्शन जगत में मोक्ष मृत्यु से नितान्त पृथक परमशान्ति और आनन्द की दिव्य अवस्था का नाम है। यदि मृत्यु स्वयं मोक्ष अथवा मुक्ति का साधन होती तो विश्व का प्रत्येक प्राणी मुक्त हो गया होता। मृत्यु तो स्वतः वस्तुतः सांसारिक क्रियाकलाप श्रृंखला का मध्यान्तर है वह अल्पावधि के लिए स्वतन्त्रता का आभास है उसके बाद जन्म लेना सृष्टि का शाश्वत नियम है।

मोक्ष या मुक्ति ही मानव जीवन का प्रधान और सर्वोत्तम लक्ष्य है चारों पुरूषार्थों में मोक्ष को प्राप्त करने के लिए त्रिवर्ग की अपेक्षा है। मोक्ष को प्राप्त किये बिना जीवन के आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक सम्पूर्ण दुःखों की चरम निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। मोक्ष परम आत्मविस्तार की स्थिति है। आत्मज्ञान, आत्म साक्षात्कार ही मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति का साधन अध्यात्म विद्या है। जीव का वास्तविक स्वरूप तो ब्रह्म ही है। अज्ञान से परिकल्पित सुख–दुःख, भोक्ता व कर्त्ता का भाव इत्यादि समस्त अनात्मभावों का परित्याग करके जीव का अपने वास्तविक परमात्मस्वरूप में अर्थात् स्व–स्वरूप में स्थित हो जाना ही आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार है। इस अवस्था में मानवीय सत्ता का व्यापक परम सत्ता के साथ एकीभाव हो जाता है। अश्वघोष ने भी निर्वाण को परम सुख बताया है यथा–

आत्मानन्दः परानन्दो निर्वाणं परम् सुखम्।
ऐष्वर्यस्य सुखं लोके ससर्पग्रहवासवत्।।
(बुद्धचरितम्, सर्ग 19, श्लोक 27)

अर्थात् आत्मा का आनंद परम आनन्द है। निर्वाण परमसुख है। ऐश्वर्य का सुख तो संसार में, सर्प वाले घर में निवास के सदृश हैं। अश्वघोष ने बुद्धचरितम् में बताया है कि–

"दुःखने मार्गेण सुखं ह्युपैति सुखं हि धर्मस्य वदन्ति मूलम्"

अर्थात् दुख मार्ग से सुख प्राप्त होता है और सुख को ही धर्म का मूल बताया है। ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता के 18वें अध्याय मोक्षसन्यास योग के श्लोक 37 में प्रकट होता है कि

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्वबुद्धिप्रसादजम्।।

अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, ध्यान, समाधि के अभ्यास के द्वारा मिलने वाला सात्विक सुख श्रमसाध्य होता है अतः यह पहले विष जैसा प्रतीत होता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है। आत्मनिष्ठ बुद्धि की निर्मलता और प्रसन्नता से यह सुख उत्पन्न होता है। इसके विपरीत राजसिक सुख अर्थात् विषय और इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न सुख पहले अमृततुल्य परिणाम में विष की भाँति होता है। इन दोनों के विपरीत जो सुख आरंभ में तथा परिणाम में आत्मा को मोहने वाला होता है निद्रा, आलस्य, प्रमाद से उत्पन्न यह सुख तामसिक होता है। संसार के सभी प्राणी इन तीनों सुखों के न्यून–आधिक्य भाव से वशीभूत रहते हैं, नियन्त्रित रहते हैं।

भारतीय दर्शन में जन्म और मृत्यु के चक्र से हमेशा के लिए छूटना ही आनंद है क्योंकि संसारी लोगों के लिए सबसे बड़ा कष्ट है बार–बार जन्म लेना और मरना। जो साधन जन्म और मरण के बंधन को भेदन करता है और उस परम शक्ति का दर्शन करता है वही स्थिति आनन्द की स्थिति है उसके बाद परमतत्व का साक्षात्कार होने पर तो दुख–सुख कुछ भी शेष नहीं रहता यही स्थिति को अश्वघोष ने सुन्दर शब्दों में चित्रित किया है यथा–

दीपो यथां निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षं
दिशं न कांचिद्विदिषं न काचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिं
(सौन्दरनन्दंमहाकाव्यम् सर्ग–16, श्लोक–28)

जिस प्रकार दीपक में तेल खत्म हो जाने पर वह दीप न पृथ्वी पर रहता है न आकाश में जाता है, न दिशा में, न विदिशा में, केवल शान्ति को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार दुःख नाश होते ही आत्मा स्वतः शान्त हो जाती है यही निर्वाण की स्थिति है।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति में चतुर्थ पुरूषार्थ स्वीकार किये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। संसारी जन केवल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) के विषय में ही चिंतन करते हैं इन्हें ही सिद्ध व प्राप्त करते हैं। काम अर्थात् कामनाओं की पूर्ति, जिसके द्वारा असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द के अलग–अलग रूप हैं अर्थात् धार्मिक क्रियाओं द्वारा यज्ञानुष्ठान द्वारा भी कर्त्ता को आनन्द की प्राप्ति, प्रभु स्मरण इत्यादि में भी आनन्द की अनुभूति है। इसी प्रकार अर्थ की कमी पुरूष के लिए विभिन्न प्रयत्नों द्वारा अनवरत दिन–रात अर्थ की प्राप्ति ही आनन्द है, अर्थ (धन) द्वारा भोगों की प्राप्ति तथा इच्छाओं की पूर्ति पर भी आनन्द ही मिलता है। इन लौकिक आनन्द से बिल्कुल ही अलग आनन्द आध्यात्मिक आनंद है जिसके द्वारा साधक अथवा योगी परब्रह्म का साक्षात्कार कर अकथनीय आनंद की अनुभूति करते हैं। विभिन्न दर्शनों में इस आनन्द की स्थिति की अलग–अलग शब्दों द्वारा व्याख्यापित किया है। कलाओं से प्राप्त आनन्द को ही सौन्दर्यानुभूति, कलानुभूति अथवा रसानुभूति कहा है। सभी कलाओं का लक्ष्य रसानुभूति होता है। सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठ परिकल्पना की परिणति वास्तव में रस ही है। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'रस' की व्याख्या में "रसो वै सः"। रसं हयेवायं लब्धवाऽऽन्दी भवति। (उपनिषद् भाष्यम्, खण्ड 1, एस. सुब्रहमण्य शास्त्री, पृष्ठ 537)

वह ब्रह्म रस रूप है। रसावस्था में प्राप्त आनंद ब्रह्मानन्द के ही समान अलौकिक और विलक्षण होता है। उपनिषद में जिस आत्मिक सौन्दर्य का वर्णन किया है उसके दो लक्षण हैं–प्रकाश और आनंद। इसी आधार पर आनंदवादी आचार्यों ने 'रस' अथवा 'सौन्दर्यानुभूति' को, स्वप्रकाशानंद अर्थात् आत्मचैतन्य से आलोकित आनन्दानुभूति माना है।

आनंद की क्रमशः तीन श्रेणियों का उल्लेख डॉ0 सत्यदेव चौधरी द्वारा किया गया है– ब्रह्मानंद, काव्यानंद (काव्य के सन्दर्भ में) और विषयानंद। इनके अनुसार ब्रह्मानन्द ही वास्तविक व सर्वोत्तम आनन्द है। वह विषयानंद के समान वृत्तियों पर आधारित नहीं होता। इसकी प्रतीति वृत्तिशून्य होती है। उन्होंने काव्यानंद को इन दोनों के बीच की स्थिति माना है, उसे ब्रह्मानन्द की ओर अधिक उन्मुख बताया है। ब्रह्मानंद उपाधियों में विभक्त नहीं हो सकता किन्तु काव्यानंद रति, शोक आदि विभिन्न उपाधियों में विभक्त हो सकते हैं। कला या कलाकृति जिस श्रेणी का आनंद प्रदान करेगी वह उसी श्रेणी की होगी अर्थात् श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संगीतकला अन्य कलाओं से आगे है। आध्यात्मिक आनन्द की स्थिति में जब अनुभूति गहन हो जाती है तो वह पूर्ण अवधान का रूप ले लेती है तभी आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति संभव है। इस स्थिति को परम आनंद अथवा परम सौन्दर्यानुभूति का तल कह सकते हैं। यद्यपि यह स्थिति कठिनसाध्य है आनंद के मार्ग में सूक्ष्म से सूक्ष्मतम की ओर बढ़ने के निरंतर अभ्यास से ही यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। संसार में अभीष्ट की प्राप्ति ही आनंद है। व्यक्ति की जो भी कामनाएँ, इप्सित है उसे प्राप्त कर ही आनन्द का अनुभव करता है यही बात आध्यात्मिक आनंद पर भी लागू होती है। साधक का अभीष्ट है परमतत्व में लीन होना जब वह स्थिति की उपलब्धि होती है वही साधक के लिए असीम, अलौकिक, अद्वितीय परमानन्द की स्थिति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, डॉ0 रमेशकुंतल मेघ, दि मैकमिलन कम्पनी इंडिया, 1977।
2. अथर्ववेद, भाषा माध्यम, महर्षि दयानन्द सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली, सं0 2031।
3. कला के दार्शनिक तत्व, डॉ0 चिरंजीलाल झा, लक्ष्मी कला कुटीर, गाजियाबाद।
4. कठोपनिषद् उपनिषद भाष्यम, सं.एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री, महेश अनुसंधान संस्थान, वाराणसी।
5. ललितकलाओं का सौन्दर्यविधान, डॉ0 मधुरलता भटनागर, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेषालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
6. छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, डॉ0 कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. तैत्तिरीयोपनिषद्– उपनिषद्भाष्यम्, सं.एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री, महेश अनुसंधान संस्थान, वाराणसी।
8. यजुर्वेद भाषाभाष्यम्, महर्षि दयानन्द, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली–5।
9. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ0 नागेन्द्र, प्रथम संस्करण, 1974, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।
10. सुंदरम, डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, प्रथम संस्करण, 1975।
11. वेदान्तसार, सदानन्द योगीन्द्र।
12. वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 ललित कुमार गौड़, निर्मल पब्लिकेशन दिल्ली।
13. सर्वदर्शनसंग्रहः, भाष्यकार डॉ0 उमाशंकर शर्मा, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।
14. ब्रह्मसूत्र, व्याख्याकार उदवीर शास्त्री, विजय कुमार गोविन्द राम, हासानंद, नई सड़क, दिल्ली।
15. उपनिषद्–दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, रामचन्द्र दत्तात्रेय रानाडे, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।